# आर्यभटीय

## गणित एवं खगोल की विवादित किताब

गुणाकर मुळे

आर्यभट ने आर्यभटीय में पृथ्वी के बारे में जो तथ्य रखे वे उस समय की धार्मिक मान्यताओं के विपरीत थे। इसलिए तत्कालीन ज्योतिषियों ने आर्यभटीय की पांडुलिपियों के साथ तथ्यात्मक तोड़-मरोड़ शुरू कर दी। कितना कठिन होता है लोगों की सोच में किसी भी प्रकार का परिवर्तन ला पाना। आर्यभटीय सिर्फ खगोल की चर्चा तक ही सीमित नहीं है, इसमें गणित के भी कई पहलू उभारे गए हैं।

### 1
### गीतिकापाद

भारत में बहुत प्राचीन काल से संख्याओं के लिए शब्दों का प्रयोग होता रहा है, जैसे, चंद्र = 1, कर्ण = 2, गुण = 3 आदि। ईसा की पहली या दूसरी सदी में भारत में शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति की खोज हुई। अर्थात ऐसी पद्धति जिसमें शून्य का इस्तेमाल होता हो, जिसका दस का आधार हो और जिसमें इस्तेमाल होने वाले संकेतों का मान उनके स्थान पर निर्भर करता हो। फिर उसके बाद पद्यबद्ध ग्रंथों में भी स्थानमान के शब्दों का प्रयोग शुरू हुआ। तत्पश्चात जब देखा गया कि शब्दांकों (अंकों को दर्शाने वाले शब्द)

की स्थापना दाईं ओर से बाईं ओर करते जाने में पद्य-रचना में सुविधा होती है, तब यह प्रथा शुरू हुई और नियम बना दिया गया : **अंकानां वामतो गतिः** यानी शब्दांक दाईं ओर से बाईं ओर चलते हैं। जैसे, खचतुष्क–रद–अर्णवाः का अर्थ होगा (ख यानी आकाश अर्थात शून्य – चतुष्क यानी चार – रद यानी दांत अर्थात 32 – अर्णवाः यानी समुद्र अर्थात 4); दाईं ओर से लिखते हुए चार शून्य, बत्तीस और फिर से चार – 4320000.

लघुता और संक्षिप्ता को पसंद करने वाले आर्यभट ने संख्याओं के लिए शब्दों के बजाए अक्षरों का उपयोग करने का निश्चय किया। संस्कृत व्याकरण के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी नई अक्षरांक पद्धति यानी अक्षरों से संख्याओं को व्यक्त करने की व्यवस्था के सारे नियम एक श्लोक में भर दिए :

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङमौ यः।

खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥

आर्यभट की यह अक्षरांक पद्धति काफी जटिल है, इतनी कि इसमें कुछ अक्षर-संख्याओं का उच्चारण भी कर पाना संभव नहीं है। इसलिए इस पद्धति का उपयोग आर्यभट तक ही सीमित रह गया। यूनानी लोग भी अपनी वर्णमाला के अक्षरों से ही संख्याओं को व्यक्त करते थे। बहुत संभव है कि यूनानी अक्षरांकों को देखकर ही आर्यभट को अपनी अक्षरांक पद्धति की प्रेरणा मिली हो।

### काल का मापन

ग्रंथ के आरंभ में ही अपनी नई अक्षरांक पद्धति को स्थापित कर देने के बाद आर्यभट अब ग्रहों की परिक्रमाओं की बड़ी-बड़ी संख्याओं को अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर देने में समर्थ थे। आर्यभट के अनुसार, एक युग (महायुग) में 4320000 बार पृथ्वी सूर्य का चक्कर (सूर्य-भगण) लगाती है, इसलिए युग में वर्ष भी इतने ही हैं। पृथ्वी भगण की संख्या वे 1582237500 देते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर एक युग में 1582237500 बार अपनी धुरी पर भ्रमण करती है। जैसा कि हमने पहले बताया है, भूभ्रमण का प्रतिपादन करने वाले आर्यभट पहले भारतीय ज्योतिषी थे। उन्होंने नाक्षत्र दिन का मान 23 घंटे 56 मिनट 4.1 सेकंड दिया है। आधुनिक मान 23 घंटे 56 मिनट 4.091 सेकंड है। आर्यभट के अनुसार, नाक्षत्र वर्ष 365.25868 दिनों का और चांद्र मास 27.32167 दिनों का था। आधुनिक गणना के अनुसार इनके क्रमशः मान हैं: 365.25636 दिन

## आर्यभट की अक्षरांक पद्धति

एक ही श्लोक में वर्णित आर्यभट की अक्षरांक पद्धति अपने सरल रूप में इस प्रकार है :

| | | | |
|---|---|---|---|
| अ | =1 | लृ | =100000000 |
| इ | =100 | ए | =10000000000 |
| उ | =10000 | ऐ | =1000000000000 |
| ऋ | =1000000 | ओ | =100000000000000 |
| औ | =10000000000000000 | | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| क् = 1, | ख् = 2, | ग् = 3, | घ् = 4, | ङ् =5, |
| च् = 6, | छ् = 7, | ज् = 8, | झ् = 9, | ञ् = 10, |
| ट् = 11, | ठ् = 12, | ड् = 13, | ढ् = 14, | ण् = 15, |
| त् = 16, | थ् = 17, | द् = 18, | ध् = 19, | न् = 20, |
| प् = 21, | फ् = 22, | ब् = 23, | भ् = 24, | म् = 25, |
| य् = 30, | र् = 40, | ल् = 50, | व् = 60, | |
| श् = 70, | ष् = 80, | स् = 90, | ह् = 100, | |

इस व्यवस्था में जहां व्यंजन के साथ स्वर मिला हो, वहां समझना चाहिए कि व्यंजनांक के साथ स्वरांक का गुणन हुआ। जैसे, कु = क् + उ = 1 × 10000 = 10000, और डि = ड् + इ = 5 × 100 = 500। ह्रस्व और दीर्घ स्वरों में कोई भेद नहीं किया गया है। जहां संयुक्त व्यंजन के साथ स्वर मिला हो, वहां समझना चाहिए कि वह स्वर उस संयुक्त व्यंजन के प्रत्येक घटक के साथ मिला हुआ है। जैसे, ख्यृ = (ख् + ऋ) + (ष् + ऋ ) = (2 × 1000000) + (80 × 1000000) = 82000000. श्लोक के अनुसार य = ङ् + म् (ङमौ य:) = 5 + 25 = 30.

एक उदाहरण लीजिए : आर्यभट की मान्यता थी कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, इसलिए वे कहते हैं कि 'कु' यानी पृथ्वी पूर्व की ओर एक महायुग (= 4320000 वर्ष) में ङिशिबुण्लृख्यृ बार घूमती है।

| | |
|---|---|
| ङि = ङ् + इ = 5 × 100 = | 500 |
| शि = श् + इ = 70 × 100 = | 7000 |
| बु = ब् + उ = 23 × 1000 = | 230000 |
| ण्लृ = ण् + लृ = 15 × 100000000 = | 1500000000 |
| ख्यृ = (ख् ष्) ऋ = (2 + 80) × 1000000 = | 82000000 |
| ङिशिबुण्लृख्यृ = | 1582237500 |

और 27.32166 दिन। *

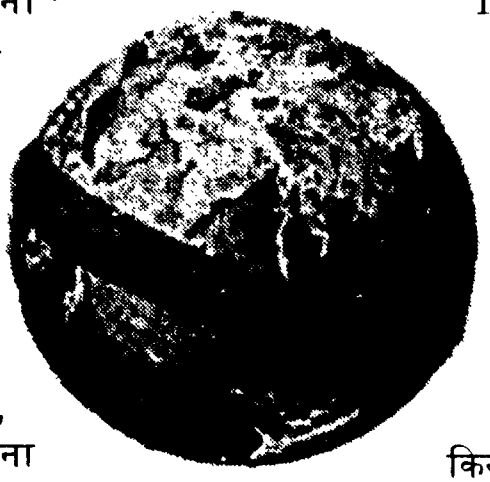

मनुस्मृति और सूर्य-सिद्धांत की युग-पद्धति, इसमें 14 मनु, एक मनु में 71 युग (चतुर्युग) और एक युग में 4320000 वर्ष होते हैं। साथ ही, मनुसंधियों की कल्पना करके एक कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) में 1000 युग माने गए हैं। आगे युग या महायुग को चार छोटे युगों – कृत, त्रेता, द्वापर और कलि – में विभाजित करके इनकी कालावधियों को 4 : 3 : 2 : 1 के अनुपात में रखा गया, यानी इन्हें क्रमशः 1728000, 1296000, 864000 और 432000 वर्षों के बराबर माना गया है।

परन्तु आर्यभट ने इस कृत्रिम युग-पद्धति को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार :

1 कल्प = 14 मनु या 1008 युग (महायुग) या 4354560000 वर्ष

1 मनु = 72 युग

1 युग = 4320000 वर्ष

आर्यभट की इस युग-पद्धति में मनुसंधि के लिए कोई स्थान नहीं है। ब्रह्मांड के सृष्टिकाल को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सृष्टि और प्रलय की मान्यताओं में उनकी आस्था नहीं थी। वे काल को अनादि और अनंत मानते थे (**कालोऽयमनाद्यन्तः**)। आर्यभट ब्रह्मा की आयु की भी बात नहीं करते।

आर्यभट ने भी युग (महायुग) को चार छोटे युगों (युगपादों) में विभक्त किया है। मगर ये युगपाद समान कालावधि के हैं, यानी प्रत्येक युगपाद 10800000 वर्षों का है। स्पष्ट है कि आर्यभट की यह युग पद्धति अधिक तर्क संगत है। उन्होंने कल्प और युग के आरंभ को किसी पार्थिव घटना के साथ नहीं जोड़ा है। उनके मतानुसार ये आकाश में ग्रहों की स्थितियों से संबंधित विशुद्ध गणित ज्योतिषीय

* नाक्षत्र वर्ष का मान वेदांग ज्योतिष में 366 दिन, वराहमिहिर द्वारा उल्लेखित पुराने सूर्य-सिद्धांत मे 365.25875 दिन, रोमक सिद्धांत में 365.2467 दिन और पैतामह सिद्धांत में 365.3569 दिन दिया गया है। नए सूर्य सिद्धांत में वर्ष का मान 365.258756 दिन है। तालेमी (150 ई.) ने नाक्षत्र वर्ष 365.24666 दिनों का और चांद्र मास 27.32167 दिनों का दिया है।

घटनाएं है।

आर्यभट ने भूभ्रमण का प्रतिपादन किया, इसलिए पृथ्वी-भगणों की संख्या दी। साथ ही, गीतिकापाद में ही उन्होंने यह भी लिख दिया कि पृथ्वी एक प्राण या उछ्वासकाल में एक कला घूमती है (प्राणेनैति कलां भू:)*।

## गणितपाद

आर्यभटीय भारतीय गणित-ज्योतिष का पहला ग्रंथ है जिसमें गणित से संबंधित एक स्वतंत्र प्रकरण है। आर्यभट का अनुकरण बाद के कई गणितज्ञ-ज्योतिषियों ने किया। आर्यभटीय का दूसरा खंड (गणितपाद), जिसमें कुल 33 श्लोक हैं, गणित से संबंधित है। आर्यभट ने गणित से संबंधित केवल महत्वपूर्ण विषयों की ही चर्चा की है, और वह भी संक्षिप्त सूत्रों में। उन्होंने केवल नियम और निष्कर्ष दिए हैं। उनके सूत्रों की रचना इतनी संक्षिप्त और गठी हुई है कि कई बार समझने में काफी कठिनाई होती है। आर्यभट ने नियमों के प्रमाण नहीं दिए हैं, उदाहरण भी नहीं दिए हैं। सूत्रों का स्पष्टीकरण और उससे संबंधित उदाहरण टीकाकारों ने प्रस्तुत किए हैं।

फिर भी, आर्यभट ने उनके समय तक ज्ञात गणित के सभी प्रमुख विषयों को संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया है। मंगलाचरण के बाद के कुल 32 श्लोकों में उन्होंने अंकगणित, क्षेत्रमिति, त्रिकोणमिति और बीजगणित से संबंधित प्रमुख और महत्वपूर्ण नियमों तथा निष्कर्षों को समेट लिया है। इसमें से कुछ नियम पहले से ज्ञात थे, कुछ स्वयं आर्यभट ने खोजे।

सर्वप्रथम आर्यभट संख्या–स्थानों के नाम बताते हैं – एक, दश, शत, सहस्र,

अयुत 10000
नियुत 100000
प्रयुत 1000000
कोटि 10000000
अर्बुद 100000000
वृंद 1000000000

ये स्थान-नाम क्रमश: दाएं से बाएं गिनाए गए हैं और प्रत्येक अगला स्थान पिछले स्थान से दस गुना है, इसलिए आर्यभट लिखते हैं –

**स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्।**

* आर्यभट के अनुसार एक दिन = 60 नाड़ी = 3600 विनाड़ी = 21600 प्राण या उछ्वास या सांस और एक चक्र = 12 राशि = 360 अंश = 21600 कला इसलिए पृथ्वी एक प्राण में एक कला घूमती है।

तात्पर्य यह कि, आर्यभट नई स्थानमान-युक्त अंक-पद्धति से भलीभांति परिचित थे।

आर्यभट ने त्रैराशिक* का जो नियम दिया है वह उनके पहले से भारतीयों को ज्ञात रहा है। उन्होंने भिन्नों के समच्छेदीकरण** को 'सवर्णत्व' कहा है और इसके लिए नियम दिया है। उन्होंने विलोम विधि*** का भी नियम दिया है।

भारत में पहली बार शुल्वसूत्रों में हमें कुछ ज्यामितीय नियम देखने को मिलते हैं। परन्तु प्राचीन भारत में यूनानी ज्यामितिकारों की तरह प्रमेयों के प्रमाण प्रस्तुत करने की परंपरा विकसित नहीं हुई।

यूक्लिड (300 ई. पू.) ने जिस तरह ज्यामिति को तार्किक आधार प्रदान किया, उस तरह भारतीय क्षेत्रमिति के लिए संभव नहीं हुआ। ज्यामितीय आकृतियों के बीजगणितीय हल प्रस्तुत करने में भारतीय गणितज्ञों की ज़्यादा दिलचस्पी रही।

आर्यभट ने गणितपाद में वर्ग, धन, त्रिभुज, समलंब, पिरामिड (सूचीस्तंभ), वृत्त और गोल की चर्चा की है। उन्होंने पिरामिड के आयतन के लिए जो सूत्र दिया है वह शुद्ध नहीं है।

## वृत्त का वर्ग उर्फ पाई का मान

ज्यामिति में वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात ($\pi$) का बड़ा महत्व है। सर्वसामान्यतः हम यह भी कह सकते हैं कि जिस देश में जिस काल में $\pi$ का जितना अधिक शुद्ध मान प्राप्त किया गया, वह देश उस काल में गणित के क्षेत्र में उतना ही आगे था। आर्यभट के पहले हमारे देश में $\pi$ के लिए 3, वर्गमूल 10 और 3.09 जैसे स्थूल मानों का प्रयोग होता था। आर्यभट ने इस अनुपात के लिए काफी शुद्ध मान प्रस्तुत किया। वे कहते हैं: "62832 उस वृत्त कि परिधि का आसन्न मान है जिसका व्यास 20000 है।

अर्थात,

परिधि/व्यास = 62832/20000

3.1416

$\pi$ का यह मान चार दशमलव स्थानों तक शुद्ध है। विशेष महत्व की

* त्रैराशिक उदाहरण – यदि 20 रुपए में एक किलो प्याज़ मिलती है तो 168 रुपए में कितने किलो मिलेगी?

**भिन्नों का समच्छेदीकरण – भिन्नों के हर स्थानों यानी नीचे की संख्याओं को समान करना।

*** विलोम विधि का उदाहरण – वह कौन-सी संख्या है जिसमें 3 से गुणा करें, फिर 1 घटाएं, फिर आधा करें, फिर 2 जोड़ें, फिर 3 से भाग दें और 2 घटाएं, तो अंत में 1 प्राप्त होगा?

बात यह है कि आर्यभट ने इसे 'आसन्न' यानी सन्निकटन मान कहा है। अर्थात्, आर्यभट जानते थे कि इस अनुपात का यथार्थ मान ज्ञात करना असंभव है। आज हम जानते हैं कि $\pi$ एक अबीजीय (ट्रांसेंडेंटल) संख्या है, और इसलिए वृत्तक्षेत्र को वर्गक्षेत्र में बदलना संभव नहीं है। यानी कि किसी भी वृत्त के क्षेत्रफल जितना क्षेत्रफल रखने वाला वर्ग नहीं बनाया जा सकता।

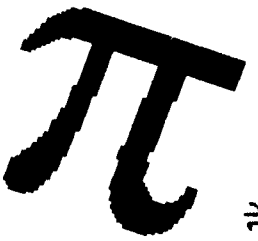

आर्यभट द्वारा $\pi$ के लिए एक बेहतर मान प्रस्तुत किए जाने पर भी ब्रह्मगुप्त पुराने 3 तथा वर्गमूल 10 मानों का ही उपयोग करते रहे। यूनानी गणितज्ञों के $\pi$ के मान आर्यभट के मान से बेहतर नहीं थे। मगर आर्यभट के लगभग समकालीन एक चीनी ग्रंथ में $\pi$ के लिए जो 3.1415929 मान है वह ज़रूर बेहतर है।

## कुछ और सूत्र

शुल्वसूत्रों में पाइथेगोरस के प्रसिद्ध प्रमेय की जानकारी है। आर्यभट ने भी इस प्रमेय को प्रस्तुत किया है। आर्यभट के समय तक अभी 'रेखागणित' शब्द रूढ नहीं हुआ था, न ही 'बीजगणित' शब्द। प्राचीन भारत में रेखागणित के लिए शुल्वगणित, रज्जुगणित, क्षेत्रमिति जैसे शब्दों का प्रयोग होता था। बीजगणित के लिए प्राचीन भारत में प्रचलित शब्द थे – कुट्टक गणित या अव्यक्त गणित। ब्रह्मगुप्त ने 628 ई. में अनिर्णीत या अनिर्धार्य समीकरणों के लिए 'कुट्टक गणित' का प्रयोग किया है। 'कुट्टक' का अर्थ है – कूटना, कुट्टी करना। आर्यभट ने प्रथम घात के अनिर्णीत समीकरण हल करने के लिए तरीका बताया है। उन्होंने श्रेढियों के लिए भी नियम दिए हैं। आर्यभटीय में श्रेणियों की भी चर्चा है।

आर्यभट ने वृत्त के क्षेत्रफल और गोल के घनफल (आयतन) के लिए सूत्र दिए हैं। वृत्त के क्षेत्रफल का उनका सूत्र तो सही है, मगर गोल के घनफल का उनका सूत्र सही नहीं है। आर्यभट के काफी पहले यूनानी ज्यामितिकार गोल के घनफल के लिए शुद्ध सूत्र प्राप्त कर चुके थे।

भारत में ब्याज लेने की प्रथा बहुत पुरानी है। संस्कृत में 'ब्याज' शब्द का मूल अर्थ है – छल, कपट, चालाकी आदि। परंतु प्राचीन भारत में सूद के अर्थ में यह ब्याज शब्द नहीं, बल्कि 'वृद्धि' तथा 'कुसीद' (दुःख देने वाला) शब्द प्रयुक्त होते थे। आर्यभट ने गणितपाद के एक श्लोक में मूलधन

पर ब्याज की रकम जानने का भी नियम दिया है।

## कालक्रियापाद

आर्यभटीय का तीसरा अध्याय है – कालक्रिया। कुल 25 श्लोकों के इस अध्याय का प्रयोजन है, ग्रहों की स्पष्ट (यथार्थ) स्थितियां निर्धारित करने के लिए आवश्यक सिद्धांत प्रस्तुत करना। चूंकि काल-निर्धारण से ही ग्रहों की स्थितियां स्पष्ट हो सकती हैं, इसलिए कालक्रिया यानी काल-गणना एक सार्थक शीर्षक है।

इसी अध्याय के एक श्लोक में आर्यभट काल-संबंधी अपनी विशिष्ट धारणा को भी स्पष्ट कर देते हैं। लिखते हैं : "युग, वर्ष, मास और दिवस सभी का प्रारंभ एक ही समय चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से हुआ। काल अनादि और अनंत है। आकाश के ग्रहों के गमन को जानकर काल-गणना की जाती है।"

आर्यभट के इस कथन का आशय यह है कि, वस्तुतः काल तो अनादि एवं अनंत है, केवल लोगों के उपयोग के लिए ही इसके आरंभ और अंत को निर्धारित किया जाता है। काल का यह निर्धारण ग्रहों और नक्षत्रों की स्थितियों से होता है। जैसे, युग का आरंभ उस समय से माना जाता है जब सभी ग्रह एक साथ मेषादि (प्रथम मेष राशि के आरंभिक बिंदु) में लंका* के क्षितिज पर थे।

आर्यभट ने अध्याय के आरंभ में ही काल और खगोल की इकाइयां प्रस्तुत कर दी। जैसे, एक दिन = 60 नाड़ी = 3600 विनाड़ी = 21600 प्राण। इसी प्रकार, एक चक्र = 12 राशि = 360 अंश = 21600 कला। इसलिए प्रथम अध्याय में ही उन्होंने कह दिया था :

**प्राणेनैति कलां भूः**

(एक प्राण में पृथ्वी एक कला घूमती है)।

आगे के श्लोकों में आर्यभट काल की बड़ी इकाइयां प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, सूर्य आकाश में पुनः उसी नक्षत्र के आदि में पहुंचने में जो समय लेता है यानी जितने समय में वह आकाश का चक्कर पूरा करता है वह एक सौरवर्ष है। फिर वे बताते हैं कि युग में वर्ष, चांद्र मास, सावन दिन** और नाक्षत्र दिन कितने होते हैं।

* लंका: विषुवद्-वृत्त पर स्थित वह काल्पिनिक स्थान जहां उज्जैन से गुज़रने वाली याम्योत्तर यानी रेखांश रेखा आकर मिलती है।

** एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय सावन दिन कहलाता है।

आर्यभट के अनुसार पृथ्वी घूमती है और नक्षत्र अचल हैं, इसलिए नक्षत्र के एक उदय से दूसरे उदय तक का काल नाक्षत्र दिन वस्तुत: पृथ्वी के एक बार घूमने के तुल्य होता है। अत: पृथ्वी एक युग में जितनी बार घूमती है वही युग में नाक्षत्र दिनों की संख्या है। वे स्पष्ट लिखते हैं : युग में नाक्षत्र दिनों की संख्या (1582237500) पृथ्वी के अपनी धूरी पर भ्रमणों की संख्या के तुल्य होती है –

**क्वावर्ताश्चापि नाक्षत्रा:**

आगे आर्यभट ने युग में अधिमासों और क्षय तिथियों की भी संख्याएं दी हैं। फिर वे अपनी विशिष्ट युग-पद्धति को पुन: दोहराते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है, आर्यभट देवता ब्रह्मा के केवल एक दिन (कल्प) की ही चर्चा करते हैं, अन्य ज्योतिष-ग्रंथों की तरह ब्रह्मा के वर्ष या ब्रह्मा की आयु (महाकल्प) की कोई बात नहीं करते।

इसी अध्याय के एक श्लोक में आर्यभट अपने जन्म वर्ष (476 ई.) की स्पष्ट जानकारी देते हैं और बताते हैं कि कलियुग के 3600 वर्ष बीत जाने पर यानी 499 ई. में उनकी आयु 23 साल की थी। आर्यभट ने स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा है कि उन्होंने 23 साल की आयु में आर्यभटीय की रचना की है।

## धरती ही है ब्रह्मांड का केंद्र

कालक्रियापाद के आगे के कुछ श्लोकों में आर्यभट ने ग्रह कक्षाओं की परिधियां दी हैं। पर यह सब बातें परिकल्पित हैं। भारतीय ज्योतिषियों ने, आर्यभट ने भी, माना कि सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर समान गति से परिक्रमा करते हैं। परंतु वास्तविकता यह नहीं है। वस्तुत: सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं और उनके वेग समान नहीं हैं। सूर्य से अधिक दूर के ग्रह अधिक धीमी गति से घूमते हैं।

आर्यभट ने एक श्लोक में ग्रहों की कक्षाओं का क्रम स्पष्ट कर दिया है : सबसे ऊपर नक्षत्र-मंडल है। उसके नीचे क्रमश: शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध तथा चंद्रमा की कक्षाएं हैं। ग्रहों के क्रम के बारे में सभी भारतीय ज्योतिषियों की यही मान्यता रही है।

मगर सप्ताह के वारों का क्रम यह नहीं है। वस्तुत: आज प्रचलित सात वारों के नाम वैदिक साहित्य, वेदांग-ज्योतिष तथा महाभारत में कहीं देखने को नहीं मिलते। भारत में सात वारों और बारह राशियों का आगमन, खल्दियाई-

यूनानी* फलित-ज्योतिष के साथ, ईसा की आरंभिक सदियों में हुआ। ग्रहगति के भारतीय सिद्धांत भी यूनानी ज्योतिष से ही ग्रहण किए गए हैं।

प्राचीन काल के ज्योतिषियों की, यूनानी ज्योतिषियों की भी दृढ़ मान्यता रही है कि पृथ्वी ही केन्द्र-स्थान में है और ग्रह व सूर्य भी, इसी की परिक्रमा करते हैं। परन्तु पृथ्वी को केंद्र में मानकर ग्रहों की स्पष्ट गतियों को जानने में कई कठिनाइयां हैं। इसके लिए यूनानी गणितज्ञ-ज्योतिषियों ने कुछ कृत्रिम योजनाएं तैयार की थीं, जिन्हें उत्केंद्री और अधिचक्री (Eccentric and Epi-cyclic) के नाम से जाना जाता है। ईसा की आरंभिक सदियों में भारतीय गणितज्ञ-ज्योतिषी अपनी परंपरागत मान्यताओं में संशोधन करने में जुटे हुए थे। उसी दौरान उन्होंने उत्केन्द्री और अधिचक्री योजनाओं को भी ग्रहण किया। इनकी जानकारी सूर्य-सिद्धांत में है। आर्यभट ने भी कालक्रियापाद में इनका वर्णन किया है।

आर्यभट एक वेधकर्त्ता ज्योतिषी और कुशल गणितज्ञ थे। उन्होंने बेबीलोनी-खल्दियाई और यूनानी ज्योतिष की कई मान्यताओं को अपनाया और उन्हें सुव्यवस्थित रीति से प्रस्तुत किया। उनके इस प्रस्तुतीकरण में मौलिकता है। कहा जा सकता है कि यूनानी गणित-ज्योतिष में जो स्थान तालेमी (लगभग 150 ई.) का है, वही स्थान भारतीय गणित-ज्योतिष में आर्यभट का है।

## गोलपाद

आर्यभटीय का चौथा और अंतिम अध्याय है – गोलपाद। पचास श्लोकों के इस सबसे बड़े अध्याय में तारा-मंडल (भगोल) पर सूर्य, चंद्र तथा ग्रहों की गतियों को समझाया गया है। भगोल** के प्रमुख वृत्तों को भी परिभाषित किया है। पृथ्वी की स्थिति और दैनंदिन गति को भी इसी अध्याय में स्पष्ट किया गया है। इसी अध्याय में आर्यभट ने ग्रहणों का भी विवेचन किया है। संक्षेप में, इस अध्याय का विषय गोलीय खगोलिकी (Spherical Astronomy) है।

सूर्य के आकाश-मार्ग को क्रांतिवृत्त कहते हैं। क्रांतिवृत्त और विषुवत्-वृत्त एक दूसरे को जिन दो बिन्दुओं पर काटते हैं उन्हें संपात-बिन्दु कहते हैं। पहले से ज्ञात होने के कारण आर्यभट

* खल्दियाई – मेसोपोटेमिया के बेबीलोनियों के लिए उनके शासन के अंतिम दौर (626 – 639 ई. पू.) में प्रयुक्त नाम है Chaldean.

**भ यानी नक्षत्र, भगोल यानी नक्षत्र-मंडल।

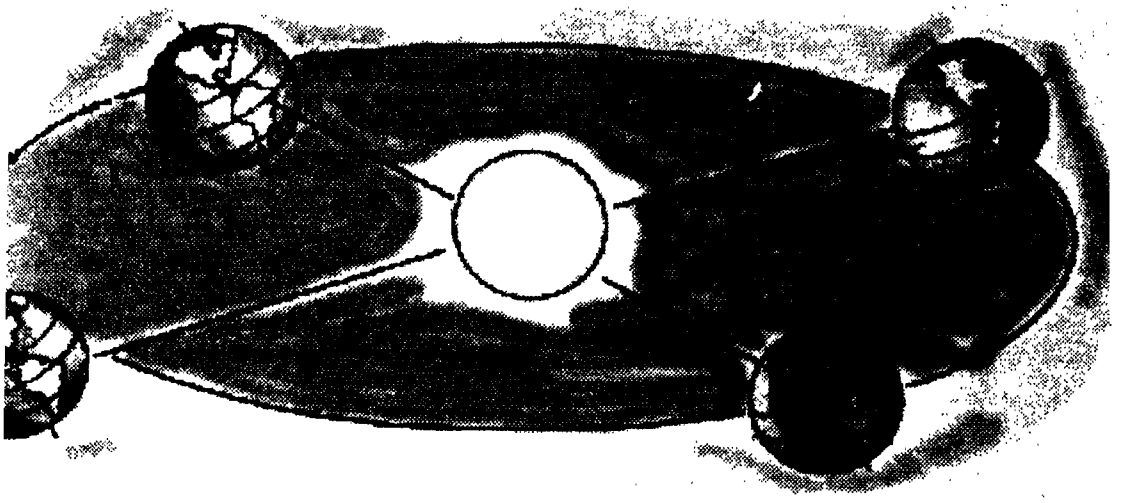

इनकी चर्चा नहीं करते। वे संपात-बिन्दुओं के पश्च-गमन यानी अयन-चलन की भी कोई चर्चा नहीं करते।

अन्य भारतीय ज्योतिषियों की तरह आर्यभट की भी यह मान्यता रही कि समूचे विश्व में अकेला सूर्य ही प्रकाश का स्रोत है और सूर्य के प्रकाश से ही आकाश के सभी पिंड, तारे भी, प्रकाशित होते हैं। परंतु आज हम जानते हैं कि तारे स्वप्रकाशित पिंड हैं।

आर्यभट पृथ्वी के बारे में जो मत व्यक्त करते हैं वे मौलिक और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। शुरू में ही वे स्पष्ट कर देते हैं कि पृथ्वी किसी आधार पर स्थित नहीं है, यह निराधार है। वराहमिहिर, भास्कराचार्य आदि का भी यही मत रहा है। मगर आर्यभट का यह मत कि पृथ्वी चार महाभूतों – मिट्टी, जल, अग्नि और वायु से निर्मित है, दूसरे ज्योतिषियों से भिन्न है। उन्होंने पांचवें तत्व 'आकाश' को स्वीकार नहीं किया।

चूंकि आर्यभट की चार महाभूतों की मान्यता स्मृति-परंपरा और आस्तिक मतों के विरुद्ध थी, इसलिए परंपरा के पोषक पुरोहित वर्ग द्वारा इसका ज़बरदस्त विरोध हुआ। वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र में पुनः पंचमहाभूत की स्थापना की।

## विरोध के स्वर

आर्यभट की जिस मान्यता का, सही होने पर भी, सबसे ज़्यादा विरोध हुआ वह है भूभ्रमण। गोलपाद के एक श्लोक में वे कहते हैं: "जिस तरह नाव में बैठा हुआ कोई मनुष्य जब पूर्व दिशा में जाता है तब तट की अचल वस्तुओं को उलटी दिशाओं में जाता हुआ अनुभव करता है, उसी तरह अचल तारागण लंका (भूमध्य रेखा पर वह स्थान जहां उज्जैन से गुज़रने वाला रेखांश आकर मिलता है) में

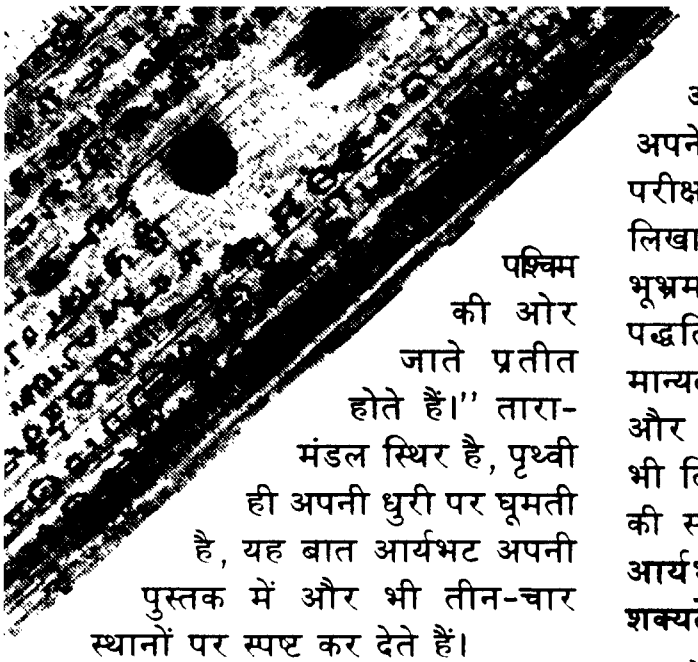

पश्चिम की ओर जाते प्रतीत होते हैं।'' तारा-मंडल स्थिर है, पृथ्वी ही अपनी धुरी पर घूमती है, यह बात आर्यभट अपनी पुस्तक में और भी तीन-चार स्थानों पर स्पष्ट कर देते हैं।

न केवल भारतीय ज्योतिष के इतिहास में, अपितु उस समय तक की समूची भारतीय चिंतन-परंपरा में आर्यभट का भूभ्रमणवाद एक नया क्रांतिकारी सिद्धांत था। उनकी यह मान्यता सही थी, परन्तु श्रुति-स्मृति परंपरा के विरुद्ध थी, इसीलिए आर्यभट के जीवनकाल में ही इसका विरोध भी शुरू हो गया था। आर्यभट के भूभ्रमण वाद पर हमला करने वाले पहले ज्योतिषी वराहमिहिर (मृत्यु : 587 ई.) हैं। आर्यभट के भूभ्रमणवाद पर कठोर प्रहार करने वाले दूसरे गणितज्ञ-ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त हैं। उन्होंने आर्यभट के दोष दिखाने के लिए अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' में तंत्र-परीक्षा नामक एक स्वतंत्र अध्याय ही लिखा। ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट के, न केवल भूभ्रमणवाद का बल्कि उनकी युग-पद्धति और ग्रहणों संबंधी सही मान्यताओं का भी खंडन किया। उन्होंने और भी दोष गिनाए और अंत में यह भी लिख दिया कि आर्यभट के दोषों की संख्या बताना संभव नहीं है – **आर्यभट दूषणानां संख्या वक्तुं न शक्यते**!*

गोलपाद के ही एक श्लोक में ग्रहणों के कारण बताते हुए आर्यभट लिखते हैं : ''सूर्य को जब चंद्र की छाया ढक लेती है तो सूर्य-ग्रहण होता है और जब पृथ्वी की बड़ी छाया चंद्र को ढक लेती है तब चंद्र-ग्रहण होता है।'' आर्यभट राहु को ग्रहणों का कारण नहीं मानते। मगर ब्रह्मगुप्त श्रुति-स्मृति के अनुसार राहु को ग्रहणों का कारण मानते हैं और इसलिए आर्यभट के मत का विरोध करते हैं।

परंतु ब्रह्मगुप्त की दृष्टि में आर्यभट का सबसे बड़ा अपराध था – श्रुति-स्मृति की अवहेलना करके भूभ्रमण

* आर्यभट के भूभ्रमण के खिलाफ ब्रह्मगुप्त ने निम्न तर्क दिए : यदि पृथ्वी घूमती है, तो मनुष्य अपने-अपने स्थान पर पुनः कैसे लौट पाते हैं, और ऊंचे-ऊंचे मकान नीचे क्यों नहीं गिरते? वराहमिहिर, लल्ल आदि अन्य ज्योतिषियों ने कहा कि यदि पृथ्वी घूमती है, तो पक्षी अपने घोसलों में कैसे लौट आते हैं? यदि पृथ्वी पूर्व की ओर घूमती है, तो आकाश की ओर छोड़ा गया तीर पश्चिम की ओर गिरेगा और बादल भी पश्चिम की ओर चलेंगे। यदि कहा जाए कि पृथ्वी धीरे घूमती है, तो यह एक दिन में एक परिक्रमा कैसे पूरी कर लेती है?

का नया सिद्धांत प्रतिपादित करना। उन्होंने अपने ग्रंथ में स्पष्ट लिखा है : "आर्यभट ... आदि के विचार लोक विश्वास के विरुद्ध और वेदों, स्मृतियों और संहिताओं (गर्ग आदि की संहिताओं) की मान्यताओं के विपरीत हैं।"

### भू: का बना भं

मगर बात केवल दोष दिखाने तक ही सीमित नहीं रही। आर्यभटीय की रचना के करीब सवा सौ वर्षों में आर्यभट के भूभ्रमण को बलपूर्वक भभ्रमण (तारागण-भ्रमण) में बदल देने के प्रयास हुए। आर्यभटीय में जहां भू: और कु (पृथ्वी) शब्द थे वहां उन्हें भं (तारा-मंडल) में बदल दिया गया! सर्वप्रथम यह परिवर्तन भास्कर प्रथम के आर्यभटीय-भाष्य (629 ई.) में ही देखने को मिलता है, ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत की रचना के ठीक एक साल बाद। बड़े आश्चर्य की बात है कि भास्कर-प्रथम अपने को आर्यभट का अनुयायी बताते हैं, उन्हें 'प्रभु' कहते हैं, मगर अपने आर्यभटीय-भाष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण मूल शब्द भू: को भं में बदल देते हैं। बाद में आर्यभटीय के सभी टीकाकारों ने, दक्षिण भारतीय टीकाकारों ने भी, यही किया – भूभ्रमण को भभ्रमण में बदल दिया। जिन्होंने बाद में आर्यभट के सिद्धांत के अनुसार स्वतंत्र ग्रंथ लिखे उन्होंने भी टीकाकारों का ही अनुकरण किया, हालांकि सभी जानते थे कि आर्यभट ने वस्तुत: भूभ्रमण का ही प्रतिपादन किया है।

मगर केवल तीन ही ज्योतिषी सचाई को खुलकर कह पाए, बौद्धिक ईमानदारी और भरपूर साहस का परिचय दे पाए। ये हैं– पृथूदक स्वामी (854 ई.), उदयदिवाकर (1073 ई.) और मक्किभट्ट (1377 ई.)। मज़े की बात यह है कि इन तीनों ने ही आर्यभटीय पर कोई भाष्य नहीं लिखा है। ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के भाष्यकार पृथूदक स्वामी लिखते हैं: आर्यभट ने भूभ्रमण को स्वीकार किया है। उनका कहना भी है – **प्राणेनैति कलां भू:।** परन्तु लोकभय के कारण भास्कर-प्रथम और दूसरों ने इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है।

आर्यभटीय के भू: और कु शब्दों को भं में यानी भूभ्रमण को भभ्रमण में बदल देने की यह व्यवस्था 629 ई. के पहले ही हो चुकी थी। यह व्यवस्था इतनी बलशाली और प्रभावकारी थी कि आधुनिक काल तक कोई भी भारतीय ज्योतिषी इसे बदलने का साहस नहीं जुटा

पाया। भास्कराचार्य (1150 ई.) पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की तो चर्चा करते हैं, किन्तु भूभ्रमण को स्वीकार नहीं करते।

## लोकभय! किन लोगों का भय?

यह तो पता चल गया कि यह सब लोकभय के कारण हुआ। मगर बुनियादी सवाल है – यह भय किन लोगों का था? यह भय सामान्य जनों का कदापि नहीं हो सकता। यहां लोकभय का अर्थ है, समाज के उस विशिष्ट वर्ग का भय जिसके हितसाधन में आर्यभट द्वारा प्रतिपादित भूभ्रमण का सिद्धांत बाधक बनता था। यह था पुरोहित-वर्ग, जिसका हित वेदों, धर्मशास्त्रों और आर्यभट के एक-दो सदी पहले से लिखे जा रहे नए-नए पुराण-ग्रंथों के वचनों की रक्षा के साथ जुड़ा हुआ था। मगर आर्यभट का भूभ्रमण का नया वैज्ञानिक सिद्धांत पृथ्वी-संबंधी श्रुति-स्मृति की परम्परागत मान्यताओं का खंडन करता था। पुरोहित वर्ग के लिए एक नई चुनौती थी। 'परमभागवत' गुप्तों के शासनकाल में यह वर्ग काफी बलशाली बन गया था। पृथूदक स्वामी ने जिसे लोकभय कहा है वह वस्तुत: शक्तिशाली पुरोहित वर्ग का भय था। वेदों और धर्मशास्त्रों के हवाले देकर अचला पृथ्वी का जो लोकविश्वास कायम किया गया था उसे टिकाए रखने में सबसे ज़्यादा हित पुरोहित वर्ग का ही था। इसलिए समाज के इस प्रभावशाली वर्ग ने आर्यभट के भूभ्रमणवाद के उन्मूलन के लिए हर संभव प्रयास किया हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

मगर उनके इस प्रयास को पूर्ण सफलता नहीं मिली। आर्यभट के भूभ्रमण से संबंधित मूल शब्द बदले गए, देश के अधिकतर भागों से 'आर्यभटीय' की हस्तलिपियां भी गायब हो गईं, उनका एक अन्य ग्रंथ 'आर्यभट-सिद्धांत' आज भी अप्राप्य है, फिर भी आर्यभट के इस सिद्धांत की चोटी के प्राय: सभी ज्योतिषियों को जानकारी रही है।

परन्तु धर्माचार्यों द्वारा भूभ्रमण का विरोध भी सतत जारी रहा। जब देखा गया कि, दबी जुबान में ही सही, आर्यभट का भूभ्रमणवाद जीवित है, तो कट्टर वेदांती अप्पय दीक्षित (1530–1600 ई.) अंतत: 'व्यवस्था' देते हैं : "वेद में पृथ्वी को 'प्रतिष्ठा' यानी स्थिर कहा गया है। आर्यभट आदि द्वारा प्रतिपादित भूभ्रमणादिवाद श्रुति और न्याय के विरुद्ध होने के कारण हेय है।

**आर्यभटाद्यभिमतभूभ्रमणादिवादानां श्रुतिन्यायविरोधेन हेयत्वात्।"***

ज्योतिष एक प्रत्यक्ष शास्त्र है, विज्ञान है। ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्र

की परम्पराएं अलग-अलग हैं। ग्रहों-उपग्रहों और नक्षत्रों की गतियों को धर्मशास्त्र के उपदेशों के अनुसार नहीं बदला जा सकता। मगर अप्पय दीक्षित ने ठीक यही किया : भूभ्रमण को हेय सिद्ध करने के लिए 'वेदवाक्य' का सहारा लिया। अथर्ववेद में पृथ्वी को 'प्रतिष्ठा' यानी अचला यानी स्थिर कहा गया है। (अथर्ववेद 6.77)

अप्पय दीक्षित जब भूभ्रमण को हेय करार दे रहे थे, तब तक यूरोप में भूभ्रमण की अच्छी तरह स्थापना हो चुकी थी। कोपर्निकस (1473–1543 ई.) का सूर्यकेंद्र सिद्धांत भी अस्तित्व में आ चुका था और ज्योर्दानो ब्रूनो (1547–1600 ई.) यूरोप के शहरों में घूम-घूमकर उसका प्रचार कर रहे थे। रोम के ईसाई धर्माचार्यों के आदेश से 1600 ई. में ज्योर्दानो ब्रूनो को ज़िन्दा जला देना और 'वेदप्रामाण्य' का आश्रय लेकर आर्यभट के भूभ्रमणवाद के उन्मूलन के लिए हर संभव प्रयास करना, इन दोनों बातों में ज़्यादा अंतर नहीं है।

आर्यभट भी द्विज कुल में ही पैदा हुए थे, परन्तु वे श्रुति-स्मृति और पुराणों के अंधभक्त नहीं थे। आर्यभटीय के अंत में उन्होंने लिखा भी है "मैंने यथार्थ और मिथ्या ज्ञान के समुद्र में से स्वबुद्धि से यथार्थ ज्ञान का उद्धार किया है।" मगर ब्राह्मण-पुरोहितों के वर्ग ने एक उच्च वर्गीय गणितज्ञ-ज्योतिषी के मतों को हेय क्यों करार दिया?

इसके लिए भी प्रेरणाएं पहले से मौजूद थीं। मनुस्मृति की व्यवस्था है : "श्रुति और स्मृति में बताए गए धर्म का अनुष्ठान करने वाले मनुष्य की इस लोक में कीर्ति होती है और परलोक में जाने पर उसे अत्युत्तम सुख मिलता है। श्रुति का अर्थ है वेद और स्मृति का अर्थ है धर्मशास्त्र। इन दोनों के प्रतिकूल तर्क नहीं करना चाहिए, क्योंकि इन्हीं से संपूर्ण धर्म प्रकट हुआ है। जो द्विज तर्कबुद्धि का सहारा लेकर श्रुति-स्मृति परम्परा का तिरस्कार करता है उसे साधुजनों द्वारा नास्तिक और वेदनिन्दक मानकर बहिष्कृत कर देना चाहिए।" (अध्याय 2,9–11)

मनु की यह 'व्यवस्था' प्रमुखतः ब्राह्मण लोकायतिकों के लिए थी। मगर बुद्धिवादी आर्यभट ने भी श्रुति-स्मृति की अवहेलना की थी, इसलिए उन पर भी इसे लागू कर दिया गया! आर्यभट की मान्यताओं को बदलने और मिटा देने के लिए सभी संभव प्रयास किए गए, सतत कई सदियों तक।

इतना ही नहीं, आर्यभट को लोक-

परशुराम कृष्ण गोड़े का लेख 'अप्पयदीक्षित'स क्रिटिसिज़्म ऑफ आर्यभट्'स थ्योरी ऑफ द डायूर्नल मोशन ऑफ द अर्थ' ABORI, Vol 19 (1938) page 93–95।

परम्परा से भी बहिष्कृत कर देने के प्रयास हुए। परम्परा से हमें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार के नौ रत्नों के बारे में जानकारी मिलती है। तथाकथित रूप से कवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध, परन्तु दरअसल 12वीं सदी में लिखी गई 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक जाली पोथी के एक श्लोक में भी इन नौ रत्नों की सूची है – धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।

हम जानते हैं कि ये सारे पंडित चंद्रगुप्त–विक्रमादित्य के समय (376–414 ई.) के नहीं हैं। महत्व की बात यह है कि इस सूची में कुसुमपुर यानी पाटलिपुत्र में पूजित ज्ञान को प्रतिष्ठित करने वाले गुप्तकाल के ही प्रथम महान गणितज्ञ-ज्योतिषी आर्यभट का नामोल्लेख नहीं है! क्या यह भारतीय विज्ञान के प्रथम पौरुषेय कृतित्व को और उसके रचनाकार को लोक-परम्परा से ही बहिष्कृत कर देने वाला प्रयत्नपूर्वक किया गया प्रयास नहीं है?

अतः यह सुस्पष्ट हो जाता है कि समाज के किस वर्ग ने, किस समय से, श्रुति-स्मृति परम्परा का खंडन करने वाले नये ज्ञान-विज्ञान का ज़बरदस्त विरोध शुरू कर दिया था। कालांतर के हमारे वैज्ञानिक अवनति के स्रोत तथाकथित 'स्वर्णयुग' में ही मौजूद हैं।

गुणाकर मुळे: प्रसिद्ध विज्ञान लेखक। हिन्दी में विज्ञान और विज्ञान के इतिहास पर शायद एक मात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने चार दशक तक लगातार और गंभीर लेखन किया है। उनका मूल विषय गणित रहा है। पचास से भी ज़्यादा पुस्तकें प्रकाशित।